छठवीं ढाल

(हरिगीतिका)

षट् काय जीव न हनन तैं, सब विधि दरब हिंसा टरी।
रागादि भाव निवार तैं, हिंसा न भावित अवतरी।।
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयौ गहैं।
अठ-दश सहस विधि शील धर, चिद्ब्रह्म में नित रमि रहैं।।१।।
अन्तर चतुर्दश भेद बाहिर, संग दशधा तैं टलैं।
परमाद तजि चउ कर मही लखि, समिति ईर्ष्या तैं चलैं।।
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं।
भ्रम-रोग हर जिनके वचन, मुख-चन्द्र तैं अमृत झरैं।।२।।
छ्यालीस दोष बिना सुकुल, श्रावक तनैं घर अशन को।
लैं तप बढ़ावन हेत नहिं तन, पोषते तजि रसन को।।
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखि कैं गहैं लखि कैं धरैं।
निर्जन्तु थान विलोकि तन मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं।।३।।
सम्यक् प्रकार निरोध मन-वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते।।
रस रूप गन्ध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध, पंचेन्द्रिय जयन पद पावने।।४।।

समता सम्हारैं थुति उचारैं वन्दना जिनदेव को।
नित करैं, श्रुति-रति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को।।
जिनके न न्हौन न दन्तधोवन, लेश अम्बर आवरन।
भू माहिं पिछली रयनि में, कछु शयन एकासन करन।।५।।
इक बार दिन में लैं अहार, खड़े अलप निज-पान में।
कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज-ध्यान में।।
अरि-मित्र महल-मसान कंचन-काँच निन्दन-थुतिकरन।
अर्घावतारन असि-प्रहारन में, सदा समता धरन।।६।।
तप तपैं द्वादश, धरैं वृष दश, रत्नत्रय सेवैं सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरैं, चहैं नहिं भव-सुख-कदा।।
यों है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रकटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब।।७।।
जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं, निज भाव को न्यारा किया।।
निज माहिं निज के हेतु, निज कर आपको आपै गह्यौ।
गुण-गुणी ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, मँझार कछु भेद न रह्यौ।।८।।
जहँ ध्यान-ध्याता-ध्येय को, न विकल्प वच-भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहाँ।।
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोग की निश्चल दसा।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत, ये तीनधा एकै लसा।।९।।
परमाण-नय-निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखै।
दृग-ज्ञान-सुख बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विषै।।
मैं साध्य-साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनि तैं।
चित्पिण्ड चण्ड अखण्ड सुगुणकरण्ड, च्युति पुनि कलनि तैं।।१०।।
यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यौ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कह्यौ।।
तब ही शुक्ल ध्यानाग्नि करि, चउ घाति विधि कानन दह्यौ।
सब लख्यौ केवलज्ञान करि, भविलोक कों शिवमग कह्यौ।।११।।

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिन माहिं अष्टम भू बसैं।
वसु कर्म विनसै सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं।।
संसार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये।।१२।।
निज माहिं लोक अलोक, गुण-परजाय प्रतिबिम्बित भये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल यथा तथा शिव परिणये।।
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिन ही अनादि भ्रमण पंच प्रकार, तजि वर सुख लिया।।१३।।
मुख्योपचार दुभेद यों, बड़भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जग-मल हरैं।।
इमि जानि आलस हानि, साहस ठानि यह सिख आदरौ।
जबलौं न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करौ।।१४।।
यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निज-पद बेइये।।
कहा रच्यो पर-पद में न तेरो पद यहै क्यों दुख सहै।
अब 'दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि दाव मत चूको यहै।।१५।।

(दोहा)

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल वैशाख।
कर्‌यो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख।।
लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द-अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पाओ भव-कूल।।१६।।

****